जनजागरूकता : साहित्य और मीडिया का अवदान

डॉ. तेजनारायण ओझा
(सीनियर फैकल्टी, हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, दि.वि.)

सारांश:- जनजागरूकता को नीर्मित करने में साहित्य और मीडिया एक महती भूमिका निभाती है। एक लोकतांत्रिक समाज में इन दोनों का जुड़ाव जन समूह से होता है। सामान्य शिक्षित वर्ग इससे प्रेरित और प्रभावित होता है। परंपरागत मीडिया से लेकर आधुनिक न्यू मीडिया ने सूचना को न केवल जन जन तक पहुँचाया है बल्कि उसे कई मामलों में एक मूवमेंट का रूप भी दिया है। साहित्य का मूलभूत सरोकार जनजागरूकता ही है। भक्तिकाल के केंद्र में इसी जागृति का स्वर था। नवजागरण में भारतेंदु एवं अन्य परवर्ती साहित्यकारों ने जनचेतना को व्यापक रूप दिया। यह जागृति उन्हीं में संभव है जो शिक्षा के प्रति संवेदनशील हों। शिक्षा के अन्तर्गत समाज, परिवार, संस्थान तथा वैयक्तिक कार्यकलापों द्वारा अर्जित औपचारिक और अनौपचारिक ज्ञानार्जन आता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति की विशिष्टता और उसका समाजीकरण दोनों अपना-अपना अर्थ पाते हैं। शिक्षा सामाजिक सुधार व प्रगति का पथ प्रशस्त करती है। शिक्षा समाज के दोषों को दूर करके एक स्वस्थ जीवन देती है।

परम्परागत संचार शिक्षा सामाजिक, उत्सवजन्य, भौतिक एवं भावावेशी आवश्यकताओं के उपकरण हैं। यह मुख्य रूप से मौखिक संचार के रूप में हैं- जैसे कथा, रामलीला का संगीत, डायलॉग के मंचन। रामायण एवं महाभारत राष्ट्रीय संस्कृति की यादें हैं। आधुनिक माध्यम के द्वारा वर्तमान समय में लाखों लोगों तक एक साथ संचार माध्यमों द्वारा सूचनायें प्रेषित की जाती हैं। यह सब तकनीकी क्रांति का परिणाम है। टेक्नोलॉजी जिस संस्कृति का पोषण कर रही है उसे मूल्यों, दर्शन, कला और साहित्य की संस्कृति के दायरे में लाने का प्रयास जारी है। इस टेक्नोलॉजी पर आधारित मीडिया के कई कार्य हैं। वह सूचना का बडा माध्यम है। वह शिक्षा के साथ-साथ मनोरंजन के क्षेत्र में भी सक्रिय है। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी मीडिया ने स्वास्थ्य संबंधी विचारों को और तेजी से फैलाया है। पर्यावरण आज वैश्विक चिंतन का सर्वाधिक चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण विषय है और इसका श्रेय मीडिया को ही जाता है। दूसरी तरफ साहित्य और मीडिया लगातार अस्मितामूलक विमर्श को अपने अपने ढंग से उभारते रहे हैं। साथ ही इनके माध्यम से बाजार और अर्थव्यवस्था से जुडी संवेदनाएँ और सूचनाएँ भी बराबर आती रहती हैं।

बीज शब्द
लोकतंत्र, अस्मितामूलक विमर्श, परंपरागत मीडिया, न्यू मीडिया, शिक्षा, सामाजिक सरोकार।

परिचय

लोकतंत्र केवल एक शासन-पद्धति ही नहीं है, बल्कि वह एक जीवनप्रणाली है। अतएव लोकतांत्रिक आदर्शों को केवल राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा जा सकता, मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। अगर कोई नवजात राष्ट्र दूसरे देशों की लोकतांत्रिक शासन-पद्धति का ही अनुकरण करता है और केवल उसी को प्रगति का सूचक मान लेता है, तो वह कदापि सच्चा लोकतांत्रिक शासन स्थापित करने में सफल नहीं हो सकता। जनता में लोकतांत्रिक आदर्शों के प्रति सुदृढ़ आस्था होनी चाहिए और उनसे ही उसका सारा जीवन-क्रम और व्यवहार अनुप्राणित होना चाहिए। जब तक जनजागरूक-संस्कृति का निर्माण नहीं हो जाता, तब तक ऐसे स्वतंत्र समाज की स्थापना भी नहीं हो सकती है, जिसमें प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक कल्याण के लिए परस्पर सहयोग कर सके। किन्तु साक्षरता इस दिशा में पहला कदम है। इससे केवल बुद्धि का कपाट खुल जाता है। साक्षर हो जाने पर कोई व्यक्ति केवल साधारण किस्से-कहानियाँ पढ़ सकता है, किन्तु यह शिक्षित नहीं हो सकता और न अपने व्यवहारों को सामाजिक और विवेकयुक्त ही कर सकता है। श्रीवालाजी ने ठीक कहा है- ''राजनीति उपचेतन समाज का दुरुपयोग है।'' वस्तुतः हमारी जन जागरूक शिक्षा योजना इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे जीवन के प्रति स्वस्थ और असांप्रदायिक दृष्टिकोण बन सके, उसमें लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो और सामाजिक व्यवहार के जीवन संस्थाओं का निर्माण हो। साथ ही शिक्षा में जीवन-पर्यंत प्रगति होनी चाहिए। हम लोग एक परिवर्तनशील जगत् में रहते हैं। इसलिए समय-समय पर हमारे मनोभावों और विचारों की पुनर्व्यवस्था आवश्यक है। साहित्यिक शिक्षा के अतिरिक्त राज्य का यह कर्तव्य है कि यह समय-समय पर जनता को महत्वपूर्ण सार्वजनिक समस्याओं की भी शिक्षा दे।

डिजरैली के शब्दों में जनता-जनार्दन की शिक्षा हमारा प्रधान कर्तव्य है। पर प्रश्न यह है कि उपग्रह, इन्टरनेट तथा इनफॉर्मेसन सुपर हाईवे के युग में इन परिवर्तनों का साहित्य, कला तथा संस्कृति-शिक्षा पर क्या और कितना व्यापक एवं गहन प्रभाव पड़ेगा? सार्वजनिक मीडिया और कम्प्यूटर प्रणाली ने साहित्य, कला, संस्कृति तथा पुस्तक (लिखित शब्द) को जो चुनौती दी है, उनसे न सिर्फ यथार्थबोध की नयी दुनिया के द्वार खोल दिये हैं बल्कि सोच और संवेदना के संसार को भी विस्तार दिया है।

साहित्य का मूलभूत सरोकार जनजागरूकता ही है। साहित्य का जो स्वर्णकाल है अगर उसे ही ध्यान दे तो उसकी चेतना में जनजागरूकता ही है। साहित्य का कार्य है अपने समय के समाज को जागृत करना। जिस स्वर्ण की बात हम कर रहे हैं उसने तो अपने समय के समाज को नवजागरण की चेतना से अभिसिंचित किया है। कुंभन दास का उदाहरण दे तो वहां स्पष्ट दिखता है कि उन्होंने सत्ता के शोषणवादी चक्र को सामने रखते हुए जनता को उसके प्रति चेताया है-

संतन को कहाँ सिकरी सो काम
आवत जात पनहिया टूटी
बिसरि गयो हरि नाम
जिनको मुख देखे पिन उपजत
तिनको करन परत सलाम।' (बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.-115)

ऐसे ही सर्वविदित है कि सन्त कवि कबीरदास ने जनजागृति को ही अपनी वाणी का विषय बनाया। हम देखते हैं कि कबीर ने अपने समय के सामाजिक बुराइयों, धार्मिक आडम्बरों, अस्पृश्यता और धार्मिक खेमेबाजी को अपनी

Scanned with CamScanner

Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
www.researchguru.net
Volume-14, Issue-2, September-2020

सांस्कृतिक विकास में साहित्य की भूमिका

डॉ. तेजनारायण ओझा
सीनियर फैकल्टी, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार:

साहित्य और संस्कृति का संबंध अन्योन्याश्रित है। साहित्य सांस्कृतिक विकास में अपनी सहयोगी भूमिका निभाता है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति अमूर्त होकर भी इतनी प्रभावी होती है कि उसमें रहने वाले लोगों की चेतना और संवेदना का विकास इतना शक्ति संपन्न होता है कि जनता की पहचान को सुनिश्चित करने लगता है। यह संस्कृति एक व्यापक और जीवंत प्रक्रिया है जिसमें राष्ट्र, समाज और व्यक्ति आभ्यांतरिक रूप से विकसित होता है। इसके साथ यह भी तय है कि किसी भी राष्ट्र का सांस्कृतिक विकास अल्पकालिक नहीं एक सुदीर्घ प्रक्रिया है। किसी भी संस्कृति के विकास में अनेक घटक कार्य करते हैं। भाषा और साहित्य भी ऐसे ही संस्कृति के विकास के उपांग हैं। अतः जैसे जैसे भाषा परिवर्तित होगी वह सांस्कृतिक परिवर्तन की सूचना देगी। भारतीय साहित्य की एक लंबी परंपरा है जो समय-समय पर भिन्न-भिन्न भाषिक उपादानों को अपना माध्यम बनाकर अपनी यात्रा को प्रवाहमान बनाया है। वैदिक साहित्य ने अग्नि संस्कृति को ना केवल प्रतिष्ठित ही किया वरन आज तक उसकी अक्षुण्ण परंपरा को बनाए रखा है। ठीक इसी प्रकार लौकिक संस्कृत के दो बड़े महाकाव्यों रामायण और महाभारत को देखा जा सकता है। परवर्ती बौद्ध और जैन साहित्य ने भी अपने समय की संस्कृति को दुख और अज्ञान से मुक्त करके देखने का प्रयास किया। भक्तिकाल में भक्ति आंदोलन के माध्यम से भारतीय संस्कृति में धर्म, न्याय, विवेक, भक्ति और सामाजिक समरसता को विकसित करने का कार्य किया। इस समय के संतकवि हों या भक्त कवि, सबने अपने-अपने तरीके से एक आदर्श संस्कृति और समाज को यूटोपिया के माध्यम से विन्यसित किया। भारतेंदुयुगीन साहित्य में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से नई संवेदना के साथ नवजागरण की संस्कृति को विकसित किया गया। जयशंकर प्रसाद का समूचा रचना संसार सांस्कृतिक पुनःजागरण का संसार है। इस प्रकार साहित्य ने प्रत्येक समय की संस्कृति को विकसित करने में अपने महत्वपूर्ण भूमिका को स्थापित किया है।

की-वर्ड्स :

वैदिक संस्कृति, आग्नेय संस्कृति, सम्यक ज्ञान, बौद्ध दुखवाद, जैन धर्म के चार व्रत, भक्ति आंदोलन, यूटोपिया, सांस्कृतिक पुनःजागरण

परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः वह निरंतर अपने समाज और उससे जुड़ी संस्थाओं के विकास का प्रत्येक स्तर पर प्रयास करता रहता है। सामाजिक विकास के अनेकानेक आयाम होते हैं। कुछ आयाम तो वे हैं जो दिखाई नहीं देते बल्कि परंपरा दर परंपरा निर्वहित होते रहते हैं। लेकिन विकास की कुछ स्थितियां ऐसी होती हैं जो भौतिक रूप में दिखाई देती हैं। इन्हीं विकास की दशाओं को क्रमशः संस्कृति और सभ्यता के नाम से जाना जाता है।

मेरा शोध पत्र सांस्कृतिक विकास से ही जुड़ा हुआ है। इस पत्र में यह दिखाने का प्रयास होगा कि किस प्रकार साहित्य सांस्कृतिक विकास में अपनी सहयोगी भूमिका निभाता है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति अमूर्त होकर भी इतनी प्रभावी होती है कि उसमें रहने वाले लोगों की चेतना और संवेदना का विकास इतना शक्ति संपन्न होता है कि जनता की पहचान को सुनिश्चित करने लगता है। अतः हम कह सकते हैं कि संस्कृति ही वह आयाम है जिसमें व्यक्ति का अंतस उसकी आत्मा और ज्ञानात्मक संवेदना विकसित होती है। यह संस्कृति एक व्यापक और जीवंत प्रक्रिया है जिसमें राष्ट्र, समाज और व्यक्ति आभ्यांतरिक रूप से विकसित होता है। इसके साथ यह भी तय है कि किसी भी राष्ट्र का सांस्कृतिक विकास अल्पकालिक नहीं वरन एक सुदीर्घ प्रक्रिया है। मार्क्स ने अपने सांस्कृतिक अध्ययन में यही प्रमाणित करने का प्रयास किया कि निरंतर मंथर गति से प्रवहमान रहने

Scanned with CamScanner

Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
www.researchguru.net
Volume-14, Issue-4, March-2021

सूरदास और भारतीय कृषक संस्कृति

डॉ. तेजनारायण ओझा
(एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, दि.वि.)

सार:

मध्यकाल (मूलत: भक्तिकाल) के कवियों ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर विचार किया है। कृषक संस्कृति मानव जीवन का एक ऐसा पक्ष है जिससे जीवन का सार निर्मित होता है इसलिए संस्कृत साहित्य में कृषि संस्कृति से उत्पन्न होनेवाले अन्न को प्राण की संज्ञा दी। मुख्यत: रसवादी आचार्यों ने 'अन्नैव प्राण:' कहकर कृषक संस्कृति के महत्व को स्थापित किया अर्थात कृषि संस्कृति है तो अन्न है और अन्न है तो जीवन है। भक्तिकाव्य अपनी जनचेतना और निस्वार्थ भक्ति के लिए जाना जाता है। भक्ति काव्य में भक्ति के साथ-साथ अपने समय का यथार्थ भी नजर आता है। इस काल के कवि काव्य रचना के लिए एकांतवास नहीं करते थे। वे अपनी जीविका के लिए किसी न किसी रूप में कृषि व्यवसाय से जुड़े हुए थे। इसी परंपरा में तुलसी और सूर दोनों ने कृषक संस्कृति की विशद व्याख्या की। कृषक संस्कृति को अनुभव के धरातल पर महसूस करते हुए अपने काव्य रचना प्रक्रिया में मानो इस प्रकार से शामिल किया कि काव्य की संस्कृति और कृषक संस्कृति एक ही हो। 'काहे को घिघियात हौ कछु राम चार्चा करो' बल्लभाचार्य के इस उत्प्रेरण से सूर जब मुक्त हुए तब उन्होंने अपनी रचना यात्रा में कृषक संस्कृति को सर्वोपरि रखा और उसमें कृष्ण की बाल-लीला, कृष्ण का सौंदर्य, गौचारण, गौपालन संस्कृति तथा ग्वाल और गोपियों को पिरो दिया। कृष्ण को गोपाल कहा गया है यानी गायों के संरक्षक। इसलिए कृष्ण काव्य में गौचारण और गोधन पर लिखने का अवकाश ज्यादा है। सूरदास ने कृषि के केवल एक आयाम को अपनी कविता का विषय नही बनाया बल्कि उससे जुड़े हुए संरचनात्मक सूत्रों को भी शामिल किया, जैसे, कृषि है तो कृषक है, उससे जुड़ा हुआ उत्पादन है फिर उपभोग की व्यवस्था है और उसमें शामिल हुए सामंत हैं जो लगातार भारतीय समाज व्यवस्था को प्रभावित करते रहते हैं। सूरदास को इन सबकी गहरी पहचान है। कृषक संस्कृति का पावस ऋतु से घनिष्ठ संबंध है क्योंकि प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था में सिंचाई के लिए समुचित प्रबंध न होने के कारण पावस ऋतु पर निर्भरता अधिक है। इसलिए सूरदास ने सूरसागर की रचना करते हुए पावस ऋतु की मार्मिक अभिव्यक्ति की है क्योंकि पावस ऋतु केवल ऋतु नहीं है, वह उद्दीपन विभाव भी है। उसके परिवर्तित होने से मनुष्य की चेतना भी परिवर्तित होती है। मानव सभ्यता के विकास में चरागाही संस्कृति और कृषक जीवन का संबंध बहुत गहरा है। इसका संबंध मिट्टी से है, प्रकृति से है, जीवन से है, आजीविका से है। इसी से यथार्थ नीर्मित होता है। साहित्य में यह यथार्थ सूक्ष्म रूप से गूँथे होते हैं और अपनी उपस्थिति से संस्कृति का एक आयाम रचते हैं।

की-वर्ड्स:

कृषक संस्कृति, कृषि जीवन, पशुचारण, गोचारण, गोधन, सामंतवादी व्यवस्था, सूदखोरी, पावस ऋतु।

परिचय:

जीवन और भोजन का नैसर्गिक संबंध है और इस भोजन के लिए मनुष्य कृषक बना। इतिहास में दर्ज है कि कृषक समाज के जन्म के साथ ही सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ। पशुपालन और व्यापार ने विस्तार ग्रहण किया। किसान ने प्रकृति को समझा, मौसम को समझा, मिट्टी को समझा, उसकी खूश्बू को समझा और इससे दोनों के बीच एक अटूट रिश्ता कायम हुआ और पीढी दर पीढी यह रिश्ता बना रहा। हिंदी साहित्य में निरंतर इसका संकेत मिलता रहा है। हिन्दी की आदिकालीन रचनाओं में कृषक जीवन की संवेदना दिखाई देती है जिसमें वही फिर

मध्यकालीन साहित्य विस्तृत रूप से दिखाई देता है। ख़ासकर भक्तिकाल में कृषि जीवन बहुत गंभीरता के साथ चित्रित हुआ है। इसके पीछे कारण यह रहा कि इस समय के अधिकांश कवि व्यवसाय और कृषि से जुड़े हुए थे। सूर के पदों में यह

Scanned with CamScanner

ISSN : 2395-2873

सहचर...

त्रैमासिक ई-पत्रिका

साहित्य, सिनेमा, कला एवं अनुवाद की पीयर रिव्यू जर्नल

प्रशस्ति – पत्र

मनोज चौधरी (महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय)

आपको यह सूचित करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है कि आपका लेख सहचर ई-पत्रिका के **'नारीशक्ति महादेवी वर्मा विशेषांक'** (तेइसवाँ अंक) में प्रकाशित किया गया है। आप अपने लेख को sahchar.com पर देख सकते हैं और साथ ही दिए जा रहे लिंक का भी उपयोग कर सकते हैं। सहचर त्रैमासिक ई - पत्रिका आपके सहयोग के लिए आभार प्रकट करती है।

धन्यवाद

डॉ. आलोक रंजन पाण्डेय

संपादक, सहचर ई-पत्रिका

ISSN 0975-119X

UGC-CARE GROUP I LISTED

वर्ष 12 अंक 1 जनवरी-फरवरी 2020

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

India's Leading Refereed Hindi Language Journal

वर्ष : 12 अंक : 1 ❑ जनवरी-फरवरी, 2020

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

प्रो. ख्रिस ओएड्रिजी
ग्रोनिंगन विश्वविद्यालय, नीदरलैंड

डॉ. मार्टिन विन्डले
वेस्टमिंस्टर विश्वविद्यालय, लंदन

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबोरो, ओन्टारियो

डॉ. कृपा शंकर तिवारी
राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. सूरज नन्दन प्रसाद
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. सी.पी. शर्मा
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

संपादकीय सम्पर्क:
448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 40564514, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com
©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संरक्षक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

ग्राम पंचायतों में जनजाति नेतृत्व की समस्या एवं समाधान–डॉ० डॉ० एन० सूर्यवंशी; संजय कुमार ध्रुव 702
भारतीय संघात्मक व्यवस्था: एक अध्ययन–दीपक कुमार कोठारीवाल 706
'परसाई साहित्य में स्त्री दशा के संवेदनात्मक पहलू'–अजय कुमार मिश्र 708
विमर्श एवं विद्या केंद्रित आलोचना–श्रीमति मीतू बरसैंया; डॉ० श्रीमती आँचल श्रीवास्तव 710
आर्ष परम्परा में वर्णित ध्यान योग मीमांसा (योग के सन्दर्भित ग्रन्थों के विशेष सन्दर्भ में)–चर्चित कुमार 713
श्रीमद्भगवद्गीता में स्वास्थ्य के सूत्र–पवित्रा देवी; डॉ० सुखबीर सिंह 717
पंतजलि योग सूत्र में पर्यावरणीय चिन्तन–सुशील कुमार 721
शिक्षा: सर्वांगीण विकास का आधार–अजय कुमार पटेल 724
रेने देकार्त और डेविड ह्यूम के संशयवाद का समीक्षात्मक अध्ययन–दिव्या पाण्डेय 728
पर्यावरणीय चिंतन में बौद्ध दर्शन की प्रासंगिकता–मयंक भारती 731
धर्मशास्त्रेषु स्वोमर्यादा–डॉ० सुबोध कुमार मिश्र भागवती 734
आदिवासी संस्कृति: साहित्य के आइने में–गौरव सिंह 736
पी०वी० नरसिंह राव के प्रधानमंत्रित्व काल में भारत की विदेश नीति का मूल्यांकन–डॉ० अलका चतुर्वेदी 739
माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन–शशि मिश्रा; डॉ० अखिलेश कुमार श्रीवास्तव 741
उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 2019, समस्या एवं संभावनाएं: एक विश्लेषण–डॉ० नन्दन सिंह; डॉ० मनोज गुप्ता 745
'दोहरा अभिशाप' में दलित स्त्री का संघर्ष–डॉ० चन्द्रशेखर राम; डॉ० राम किशोर यादव 748
भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका: संक्षिप्त विवेचन–डॉ० अरविंद कुमार 752
हल्बा जनजाति के विवाह संस्कार के बदलते स्वरूप का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन
(छत्तीसगढ़ के उत्तर बस्तर कांकेर जिला के विशेष संदर्भ में)–दुजराम टण्डन; डॉ० प्रीति शर्मा 757
समाचार पत्रों के संपादकीय विषय वस्तु का विश्लेषण (हिमाचल प्रदेश से प्रकाशित दिव्य हिमाचल के विशेष संदर्भ में)
–विमलेश कुमार; डॉ० अर्चना कटोच 761
बाल श्रम के कारण एवं परिणाम: पटना जिला के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन–रंजीता कुमारी 765
ममता कालिया का 'बेघर' व सुषमा बेदी का 'मोरचे' का आलोचनात्मक अध्ययन–संगीता यादव 769
हिन्दी साहित्य में मॉरिशस के साहित्यकारों की प्रासंगिकता–कृपा शंकर; प्रोफेसर विनोद कुमार मिश्र 771
वर्ण-जाति से संबंधित डॉ० अम्बेडकर का विचार–डॉ० पंकज तिवारी 776
साधारणीकरण अवधारणा और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–विशाल मिश्र 779
सहकार की दृष्टि में किसान और मजदूर–डॉ० अभिषेक मिश्र 781
नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में नारी पात्रों की प्रासंगिकता–अजय कुमार 784
हिन्दी साहित्य में ललित निबंध एवं लोकजीवन की प्रासंगिकता–प्रदीप कुमार तिवारी 788
स्नातक स्तर पर अध्यापकों के दायित्वबोध का अध्ययन–डॉ० समर बहादुर सिंह 792
पंचायती राज व्यवस्था में महिला प्रतिनिधियों की भूमिका–रोहित सिंह 796
ममता कालिया के उपन्यासों में स्त्री का सामाजिक संघर्ष–दिव्या यादव 799
प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का मनोसामाजिक विकास: लखनऊ जनपद के परिषदीय विद्यालयों का एक अध्ययन
–निहारिका श्रीवास्तव; डॉ० प्रवीण त्रिपाठी 802
निराला के गद्य साहित्य की सामाजिक उपादेयता–डॉ० अर्चा मिश्रा 806
महिलाओं के आर्थिक स्वावलंबन में स्वयंसहायता समूहों का योगदान: परभणी जिले के संदर्भ में चिकित्सक अध्ययन
–डॉ० लक्ष्मीकांत शिवदास हुरणे 810
आधुनिकता एवं हिन्दी नाटक (मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में)–उपेन्द्र कुमार विश्वकर्मा 816
यौन शिक्षा की आवश्यकता–डॉ० के०डी० तिवारी 819
वाल्मीकि समाज-दशा और दिशा–डॉ० सुमित्रा मेहरोल 822
शारीरिक शिक्षण में सहायक सामग्री – उपयोग व महत्व–डॉ० सीमा सिंह 825
डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शैक्षिक विचार–बबिता कुमारी 830

'दोहरा अभिशाप' में दलित स्त्री का संघर्ष

डॉ० चन्द्रशेखर राम

महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ० राम किशोर यादव

श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार

समाज के भीतर विद्यमान वर्गीय संरचना में दलित शोषण और उपेक्षा से पीड़ित हैं। इस उपेक्षा के कारण सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में उन्हें निरन्तर संघर्ष करना पड़ा है। दलित विमर्श जो साहित्य के लिए मूल्यवान है इसी संघर्ष का परिणाम है। जीवन में जो उनके साथ हो रहा है उसके दुख-दर्द उनकी जीवन गाथा को ही दलित विमर्श के केन्द्र में रखा गया है। जो सदियों से समाज में तिरस्कृत रहा हो उसकी वेदना को वही व्यक्ति ज्यादा समझ सकता है जो उसका शिकार है। उसके भीतर जो भाव है उसने जो कुछ झेला है उसको मुखर अभिव्यक्ति अपने रचित साहित्य में करता है। इस पर अनेक विचार आये हैं। अलग-अलग दृष्टिकोणों से आलोचकों ने इसे देखने का प्रयास किया है। मेरी दृष्टि में दलित जीवन की यथार्थपूर्ण स्थिति का आकलन करना ही दलित साहित्य है। 'दोहरा अभिशाप' में कौसल्या बैसंत्री का जीवन संघर्ष चित्रित है। यह हिन्दी की पहली आत्मकथा है जो दलित महिला की है। दलित महिला के द्वारा लिखने का साहस अपने आप में चुनौती पूर्ण है। जिस समाज के लोग ही जब वेदना को चित्रित करने में पूरी तरह सफल नहीं हुए है वहां कौसल्या जी का यह प्रयास सराहनीय है। उनके जीवन के भीतर का यथार्थ रूप परिलक्षित होता है। अपने अदम्य साहस और जिजीविषा के बल पर उन्होंने यह साहसिक कार्य किया है। महाराष्ट्र की रहने वाली महिला का यह जीवन्त और सार्थक प्रयास है। एक ऐसी स्त्री जो [illegible] है जो अपने घर में और घर के बाहर दोनों जगह शोषण का शिकार है। वह दोहरा अभिशाप झेल रही है। मैं तो कहता हूं कि वह दोहरा नहीं तिहरा अभिशाप की शिकार है। एक तो दलित होने का,दूसरा स्त्री होने का और तीसरा पति से प्रताड़ित होकर। इस तिहरे अभिशाप को झेलने वाली महिला की जीवनगाथा को ही प्रस्तुत किया गया है। इसमें जीवन का यथार्थ चित्रित है। एक स्त्री के जीवन में घटित हो रहे क्रिया व्यापारों का मूल्यांकन है। वह क्या करे? किससे शिकायत करे? उसकी कौन सुनेगा? जब पति ने ही उसे नहीं समझा तो बाकी कौन समझेगा? कौसल्या बैसंत्री का जीवन ही उनका इतिहास है। लेखिका ने उनका चित्रण करके जोखिम को मोल ले लिया है। यह उसके भोगे हुए यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज है।

समाज के भीतर विद्यमान वर्गीय संरचना में दलित शोषण और उपेक्षा से पीड़ित हैं। इस उपेक्षा के कारण सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में उन्हें निरन्तर संघर्ष करना पड़ा है। दलित विमर्श जो साहित्य के लिए मूल्यवान है इसी संघर्ष का परिणाम है। जीवन में जो उनके साथ हो रहा है उसके दुख-दर्द उनकी जीवन गाथा को ही दलित विमर्श के केन्द्र में रखा गया है। जो सदियों से समाज में तिरस्कृत रहा हो उसकी वेदना को वही व्यक्ति ज्यादा समझ सकता है जो उसका शिकार है। उसके भीतर जो भाव है उसने जो कुछ झेला है उसको मुखर अभिव्यक्ति अपने रचित साहित्य में करता है। इस पर अनेक विचार आये हैं। अलग-अलग दृष्टिकोणों से आलोचकों ने इसे देखने का प्रयास किया है। मेरी दृष्टि में दलित जीवन की यथार्थपूर्ण स्थिति का आकलन करना ही दलित साहित्य है। दलितों की स्थिति का विचार करते हुए प्रख्यात समाजशास्त्री एम.एन.श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक 'सोशलाजिकल स्टडी ऑफ मॉडर्न इंडिया' में लिखा है, "वैदिककाल में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से जो वर्णव्यवस्था चली, वह आज भी जारी है। यहां तक कि अंग्रेजों के शासनकाल में भी वर्णव्यवस्था को प्रोत्साहित किया गया। हालांकि, अंग्रेजों ने सतीप्रथा, मानव बलि व दास प्रथा को रोकने का प्रयास किया लेकिन इसका लाभ उच्चवर्ग को ही मिला। जबकि शिक्षा और जागरूकता के अभाव में दलित इससे वंचित रह गये।"

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर दलित समाज के प्रेरणास्रोत हैं। वे संपूर्ण भारत के लोगों के प्रेरणा स्रोत हैं वे भारतीय संविधान के निर्माता हैं। वे मसीहा हैं मानवता के। वर्णव्यवस्था में पीसते मानव की कथा को उनके जीवन संघर्ष के माध्यम से समझा जा सकता है। उनका योगदान भारत के महत्वपूर्ण है अगर वह समाज के लोगों को समृद्ध करने का प्रावधान संविधान में नहीं करते तो एक वृहद् आबादी को विकास का मौका ही नहीं मिलता। समाज के भीतर के खाई को कम करने में अम्बेडकर का महान योगदान है। वे राष्ट्र निर्माता हैं। वे मानवता के पुजारी है।

आत्मकथा लेखन की परम्परा पुरानी है। इसके जीवन में घटित सभी घटनाओं का समग्रता में विवेचन किया जाता है। दलित आत्मकथाओं ने साहित्य को समृद्ध करने में अपना योगदान दिया है। समाज के हाशिए पर खड़ा यह समाज हर प्रकार की यातना का शिकार रहा है। जब लोग इन्हें मानव ही नहीं समझते

अंक 16 भाग-03 जुलाई-सितंबर (2020) ISSN:2348-7771

PEER REVIEWED AND REFEREED JOURNAL

IIJIF GENERAL IMPACTFACTOR

आभ्यंतर

लोक, भाषा, विश्व साहित्य और समकालीन वैचारिकी का मंच

संपादक
कुमार विश्वमंगल पाण्डेय

हिन्दी दलित कहानियों में नारी मुक्ति-संघर्ष

डॉ.आभा शर्मा
हिंदी विभाग
महाराजा अग्रसेन कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्राचीन काल से ही दलित और गैर दलित साहित्य की अलग-अलग परंपराएं रही हैं! वह चाहे सिद्धों, नाथों और बौद्धों से लेकर कबीर रैदास तक ही क्यों ना हो! इन संत कवियों ने बहिस्कृत जातियों के रूप में अपनी एक अलग पहचान बनाई! जाति भेद की पीड़ा को बीच में रख कर भी इन्होंने अपनी रचनाओं में ईश्वर को मध्यस्थ रख कर समता और बंधुत्व की बातें की! तब दलित शब्द इतना प्रचलित ना था! हिंदी साहित्य में लेखकों ने भी अपनी रचनाओं में सवर्णया (गैर दलित वर्ग के लेखकों) ने इन दलितों की समस्याओं का चित्रण किया है! इन लेखकों ने अपनी कविताओं या कहानियों के माध्यम से दलितों के मत को प्रकट करने की कोशिश है! चाहे वह भूल वश हो या दलितों के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए! उन्होंने इस साहित्य को दलित चेतना का नाम दिया और उजागर करने का प्रयास भी किया!

भूमिका-यदि हम हिंदी कथा साहित्य के विकास की दृष्टि से सुनिश्चित करें तो कहानी विधा का आरंभ भारतेन्दु युग की उपज उस रूप में नहीं जैसे उपन्यास और निबंध आते हैं! लेकिन तत्कालीन निबंधों और अन्य गद्य रूपों में जिन शैलियों का विवरण हो रहा था, उनमें कहानी के तत्व अवश्य देखे जा सकते हैं! विशेष रूप से हिंदी में प्रेमचंद ने किसानों स्त्रियों और दलितों को विषय बनाकर अनेक कहानियों की रचना की! दलितों से सीधे संबंध रखने वाली उनकी कहानी में प्रमुख कहानियां हैं-'सद्गति', 'ठाकुर का कुआं', 'कफन', 'सवा सेर गेहूं', तथा घासवाली! इसी प्रकार फणीश्वर नाथ 'रेणु' की कहानी 'रसप्रिया' और 'ठेस' इत्यादि! दलित पात्रों को केंद्र में रख कर लिखी गई कहानी है! इस संदर्भ में विमल थोराट लिखती हैं "दलित साहित्य आंदोलन दलित मुक्ति आंदोलन के अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन का साहित्य रूप है अतः इसे मात्र आर्थिक विषमता मिटाने वाला आंदोलन नहीं कहा जा सकता वह सामाजिक विषमता मिटाने के लिए भी प्रतिबद्ध है"[1] (मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, विमल थोराट पृष्ठ 52) इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित आंदोलन में अस्पृश्यता को दूर करना एक बड़ा और मुश्किल भरा मुद्दा रहा! दलित कहानियों में नारी की स्थिति हिंदी में दलितों को विषय बनाकर कहानी लिखने की परंपरा पुरानी है! दलित समस्याओं पर गैर दलित लेखकों ने भी कहानियां और उपन्यास लिखें पर इनकी रचनाओं पर दलित चेतना का नितांत अभाव देखा जा हैं! परंतु हम दलितकारों की रचनाओं में ही भोगे हुए यथार्थ का अंकन कर पाते हैं! हिंदी में तमाम दलित कथाकार और उनकी कहानियों के नाम गिनाना तो संभव नहीं है! परंतु इन कथाकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित जीवन के यथार्थ को बखूबी चित्रित किया है, और भारतीय समाज में फैले हुए जातिवादी विसंगतियों का पर्दाफाश किया है! इन लेखकों में मुख्य रूप से मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, शिवराज सिंह बेचैन, ओमप्रकाश वाल्मीकि तथा कर्मशील भारती इत्यादि हैं! यदि हम महिला कथाकार की बात करें तो इनमें सुशीला टाकभौरे, अनीता भारती, रजनी तिलक, कुसुम मेघवाल आदि कुछ ऐसे रचनाकार हैं जिनकी कहानियों नें हिंदी कथा जगत में अपनी एक अद्भुत पहचान बनाई है! अब हम बात करते हैं-

जंगल की रानी- ओमप्रकाश वाल्मीकि के द्वारा लिखित कहानी 'जंगल की रानी' एक दलित नारी की स्थिति को उजागर करने वाली कहानी है! यह कहानी 'घुसपैठिए'(2003) कहानी संग्रह में संकलित है इस कहानी में वर्ण व्यवस्था से लड़ने का साहस ग्रामीण जीवन की दलित नारियों का यथार्थ चित्रण तो हुआ है! वही एक दलित नारी का अपनी अस्मिता बचाते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाना भी कहानी कारने दलित नारी वर्ग के प्रति जो दयनीय स्थिति दिखाई है उसे यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित नारी हर घड़ी दोहरे अभिशाप को जीती हैं! फिर भी अपने कार्य को नियंत्रित करती रहती है! इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने समाज में सभ्य वरिष्ठ और जिम्मेदार पदों पर कार्य करने वालों का मुखौटा उतार कर रख दिया है ताकि इस मुखौटे पर छिपे हुए उनके यथार्थ को सामने लाया जा सके! इसी प्रकार-

क्षितिज- रतन कुमार सांभरिया जी की कहानी 'क्षितिज' की नायिका रेवती दो दो जगह छली जाती है! पहले ससुराल में जमींदार की हवस का शिकार होती है! जब सास बहू खेत में घास काटर ही होती है! नानक सिंह के आगमन से पहले तो वह दोनों चौंकी बाद में नानक सिंह ने उसे अपना हवस का शिकार बनाया! जैसे नानक सिंह मानवीय सदाचार और उम्र की सीमा लांघकर धृष्टता पर उतर आया! उसने रेवती का हाथ पकड़ लिया वे दहल उठी! रेवती चिल्लाई तो नहीं लेकिन आपने आपको छुड़ाने के लिए छटपाने लगी! अब नानक सिंह ने उसे अपनी बाहों के आगोश में समेट लिया! इस वक्त रेवती असहाय की दशा में जैसे छिपकली के मुंह में फंसी तितली जैसी हो गई थी! इस कहानी में सांभरिया जी ने दलित नारी की वेदना का यथार्थ उभार कर हमारे सामने रखा है! मानव की सामाजिक सोच का स्तर और कानून व्यवस्था का बिंब भी साफ़तौर पर दिखाई देता है! जहां दलित नारी गांव में रहकर पूंजीपतियों और कानून में रह रहे सवर्ण जाति के लोगों का शिकार बनती रही है!

आज की अहिल्या- 'आज की अहिल्या' कहानी सूरजपाल चौहान द्वारा लिखी गई एक दलित नारी की कहानी है! जो बाद में नाम बदल कर अंगूरी नाम से प्रकाशित करवाया गया! अंगूरी के सुंदरता पर मोहित हो कर पंडित चंद्रभान और काले पहलवान अपनी पिपासा को शांत करने के लिए अंगूरी को अपने जाल में फंसाने का मौका देखते हैं! पंडित चंद्रभान उसके पति को एक रात के लिए तहसीलदार के पास कस्बे में भेज देता है! उसके बाद दोनों ने योजना अनुसार उसके घर रात के अंधेरे में हमला बोल दिया है पंडित चंद्रभान को अपने घर में देख कर वह क्रोधित होते हुए बोलती है "जरा ठहर हरामी कमीने.....पंडित दूसरे की बहूबेटियों पर बुरी नजर रखने वाले निकल मेरे घर से..इस पर पंडित ने अंगूरी को समझाते हुए कहा अंगूरी ठहरी अनपढ़ औरत अब मैं तुझे कैसे समझाऊं कि मैं तो वही कार्य करने आया हूं जो

यूजीसी केयर लिस्ट में शामिल
जनवरी–मार्च 2021
वर्ष 11, अंक–21

मूल्य–100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

प्रेमचंद की साहित्य दृष्टि

डॉ. आभा शर्मा

प्रेमचंद हिंदी साहित्य में एक ऐसा नाम है जिसको भारतीय साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्वसाहित्य में भी महत्त्वपूर्ण पहचान मिली है। उनकी कहानियाँ, उपन्यास और समाज को उद्वेलित करने वाले विभिन्न विषयों से संबंधित लेख ही नहीं, बल्कि उनका पत्रकारिता-लेखन भी परवर्ती रचनाकारों के लिए अनुकरणीय बना हुआ है। साहित्य उनके लिए किसी तरह के मनोरंजन का साधन मात्र नहीं था बल्कि लेखन उनके लिए एक मिशन की भांति था। जीवन की कष्टपूर्ण और असहज पारिवारिक परिस्थितियों ने उनको अधिक संघर्षशील और मजवूत वनाया। कठिन स्थितियों के बीच भी उन्होंने न केवल पढ़ने की अपनी ललक कायम रखी वल्कि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के लिए जैसे भी संभव हुआ, पढाई की। साथ-साथ समय निकलकर देश-विदेश के अनेक लेखकों के साहित्य का अध्ययन भी किया। जीवन-यापन आसन नहीं था। "उन दिनों नाज वीस सेर का था लेकिन तव के लिए वह महंगाई थी। प्रेमचंद गाँव में रहते थे; ट्यूशन करते थे। शहर पढने जाते थे और पांच मील वापस आकर रात को कुप्पी जलाकर खूव पढ़ते थे। हाईस्कूल पास करने के वाद कॉलेज में वह तभी भरती हो सकते थे जव उनकी फीस माफ हो जाए और इसके लिए सिफारिशों की जरूरत थी। इसी समय मेहनत से चूर होकर वह वीमार पड़ गए और दो हफ्ते तक नीम का काढ़ा पीते रहे। वड़ी मुश्किल से कॉलेज में भरती हुए और जैसे-जैसे पढाई जारी रखी, लेकिन फेल हुए। तव इंटरमीडिएट में गणित ऐच्छिक विषय न था।" (प्रेमचंद और उनका युग, भूमिका, रामविलास शर्मा, पेज 18)

जीवन की अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी प्रेमचंद अपने रास्ते पर चलते रहे। वस्तुतः प्रेमचंद के जीवन की इन कठिन परिस्थितियों के बारे में अनेक लोगों ने लिखा भी है। उनकी जीवनी में भी इसका विस्तार से उल्लेख है। प्रेमचंद लिखते हैं, "मैट्रिकुलेशन तो किसी प्रकार पास हो गयाय पर आया सेकंड डिवीजन में और क्वींस कॉलेज में भरती होने की आशा न रही। फीस केवल अव्वल दर्जे वाले की ही मुआफ हो सकती थी। संयोग से उसी साल हिंदू कॉलेज खुल गया। मैंने इस नए कॉलेज में पढने का निश्चय किया। प्रिंसिपल थे मि. रिचर्डसन। उनके मकान पर गया। वह पूरे हिंदुस्तानी वेश में थे। कुरता और धोती पहने फर्श पर बैठे कुछ लिख रहे थे। मगर मिजाज को तब्दील करना इतना आसान न था।" साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद (मंगलसूत्र व अन्य रचनाएँ, पृष्ठ 165, सरस्वती प्रेस इलाहबाद। 1982)

प्रेमचंद के हौसले की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। खुद ही अपनी पढाई को जारी रखने के लिए संघर्ष करते हुए कहाँ-कहाँ नहीं गए। ऐसा कम ही देखने को मिलता है। प्रेमचंद लिखते हैं कि "मेरी प्रार्थना सुनकर आधी ही कहने पाया था—वोले कि घर में कॉलेज की वातचीत नहीं करता। कॉलेज में आओ। खैर, कॉलेज में गया। मुलाकात तो हुई, पर निराशाजनक। फीस मुआफ न हो सकती थी। अब क्या करूँ? अगर प्रतिष्ठित सिफारिशें ला सकता, तो शायद मेरी प्रार्थना पर कुछ विचार होताय लेकिन देहाती युवक को शहर में जानता ही कौन था?" साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद (मंगलसूत्र व अन्य रचनाएँ, पृष्ठ 166, सरस्वती प्रेस इलाहबाद। 1982)। लेकिन एक वात अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसके बावजूद प्रेमचंद उस स्थान पर पहुँचे जो बहुत से लोगों के लिए दुर्लभ है। यह जीवन की सच्चाइयों को आत्मसात करके उस असली अनुभव को अपनी रचनाओं में पिरो देने के कारण ही संभव हुआ। वस्तुतः जीवन साहित्य से पृथक नहीं है जैसा कि कुछ लोग मानते हैं। रचनाकार के जीवनानुभव उसके लेखन में परिलक्षित होते हैं। तत्कालीन सामाजिक समस्याओं की प्रेमचंद इतनी गहरी और यथार्थ समझ थी कि आज के संदर्भ में भी उनका आकलन बड़ा ही प्रासंगिक लगता है। प्रेमचंद ने जिस तरह स्वयं भी लिखा है कि गणित उनकी कमजोरी थी। अपनी इस कमजोरी के कारण वे कई बार परीक्षा में फेल हुए। यहाँ तक कि जब इंटरमीडिएट की परीक्षा में गणित से नियमानुसार मुक्ति मिल गई तभी परीक्षा पास कर सके। "गणित मेरे लिए गौरीशंकर की चोटी थी। कभी उस पर न चढ़ सका। इंटरमीडिएट में दो बार गणित में फेल हुआ और निराश होकर इम्तहान देना छोड़ दिया। दस बारह साल के बाद जब गणित की परीक्षा में अख्तियारी हो गई तब मैंने दूसरे विषय लेकर उसे आसानी से पास कर लिया। उस समय तक यूनिवर्सिटी के

वर्ष – 10, अंक–2
अंक : अक्टूबर – दिसंबर 2020
UGC-CARE LISTED S.N. - 61

मूल्य-100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

कविता और संप्रेषणीयता

डॉ. आभा शर्मा

कविता की भावनाओं की अभिव्यक्ति का सबसे सहज और मजबूत साधन है। कविता में भाषा जितनी मारक होगी वह उतनी ही संप्रेषित करेगी। आई.ए. रिचर्ड्स का मानना है कि "कविता का संप्रेषण भाषा के माध्यम से होता है।"[1] संप्रेषण भाषा का एक रूप है। हम अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए तमाम तरह के शब्दों का प्रयोग करते हैं लेकिन सार्थक संप्रेषण वही होता है जो वक्ता और श्रोता के बीच संबंध स्थापित कर सके। व्यक्ति अपनी इच्छाओं और आत्मिक उदगार के लिए जो माध्यम चुनता है उसे संप्रेषण कहा जाता है–"अपनी इच्छाओं एवं विचारों को दूसरों पर व्यक्त करना तथा दूसरों की इच्छाओं एवं सूचनाओं को जानना हर व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। मनुष्य की इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति का विस्तार सम्प्रेषण के द्वारा ही संभव है। सम्प्रेषण मनुष्य ही नही समाज की भी आवश्यकता है। यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि संप्रेषण के बिना किसी प्रकार का निर्माण ही संभव नहीं है।"[2]

आजकल पठनीयता के संकट ने कविता में संप्रेषण पर सवाल खड़ा किया है। कविता मंच और पाठन दोनों के लिए लिखी जाती है। मंच की कविता और साहित्यिक कविता में भाषा का ही फर्क होता है। दोनों कविताओं की लोकप्रियता का आधार भाषा होती है। खराब से खराब कथ्य वाली कविता अपनी भाषा के कारण लोकप्रिय हो जाती है जबकि अच्छे कथ्य वाली कविता भाषा के अभाव में धरी की धरी रह जाती है–"अभिव्यक्ति के कारण एक बेकार कविता भी खूब तालियाँ बटोर लेती है और एक अच्छी कविता भी अभिव्यक्ति दोष के कारण श्रोताओं के सिर के ऊपर से निकल जाती है। मौखिक संप्रेषण तब तक अस्थायी होता है जब तक कविता लिखित रूप में नहीं आ जाती। यदि कविता लिखित रूप में है और किसी पुस्तक का हिस्सा है तो इससे होने वाला संप्रेषण स्थायी होगा। पाठक उस कविता से कितना प्रभावित होता है, यह उस पर आश्रित है कि कविता कितनी उसकी समझ में आई है। एक विद्वान कवि कविता की तह तक पहुँच जाता है और उसके गुण-दोष की समीक्षा करता है।"[3]

भारतेंदु हरिश्चंद्र के विषय में कहा गया है कि उनका महत्त्व मात्र इसलिए नहीं है कि खड़ी बोली के स्वतंत्र हिंदी रूप के प्रचार के लिए उन्होंने तरह-तरह के उद्योग किए बल्कि इसलिए भी है कि उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीयता की भावना और समाज की नवीन चेतना के प्रसार का माध्यम बनाया। इस प्रकार उन्होंने भाषा को राष्ट्रीय चेतना से संपन्न किया। इसी कारण भारतेंदु हिंदी के प्रति जनता का समर्थन जुटा कर आंदोलन की सृष्टि करने में समर्थ हुए। जनता की आमबोल चाल की भाषा पर उन्होंने ध्यान दिया तथा व्यावहारिक स्तर पर अपनी रचनाओं में इस को आधार बनाया। रचना के स्तर पर भारतेंदु ने अनेक भाषा प्रयोग भी किए। पद्य के लिए उन्होंने ब्रजभाषा को अपना या तथा गद्य के लिए खड़ी बोली को आधार बनाया। अपनी रचनाओं–नाटक, कविता और निबंध आदि में उन्होंने प्रचलित हिंदी भाषा के विभिन्न रूपों को अपनाया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय की कविता भारतेंदु की कविता से भिन्न प्रकार की कविता है। रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि–"भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिस प्रकार गद्य की भाषा का रूप स्थिर करके गद्य साहित्य को देशकाल के अनुसार नए नए विषयों की ओर लगाया, उसी प्रकार कविता की धारा को भी नए नए विषयों की ओर मोड़ा। इस नए रंग में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था। उसी से लगे हुए विषय लोकहित, समाजसुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि थे। हास्य और विनोद के भी नए विषय इस काल की कविता को प्राप्त हुए।"[4]

आधुनिक कविता के तार सप्तक को छोड़ दें तो सन् 1942 से पहले या अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' से पहले आधुनिक हिंदी कविता के नाम पर जो कविता हमारे सामने आयी वह कविता पुनरोत्थानवादी कविता कही गई थी जो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी में लिखी गई थी। उससे पहले की कविता जो भारतेंदु युग में लिखी जा रही थी और उस पर ब्रज भाषा का प्रभाव था। कालांतर में छायावादी आंदोलन की शुरुआत के बाद कविता भाषा और संप्रेषण की दृष्टि से कुछ-कुछ कठिन होती गई। वह कविता की जनता से विमुख हुई। क्योंकि उसने एक भाषा के नए 'डिक्शन' का सहारा लिया और अप्रत्यक्ष विधान, अप्रस्तुत विधान आदिको कविता में स्थान दिया। 'छायावाद' के विरोध के अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि वह कविता संप्रेषणधर्मी कम है। उसे 'स्थूल का सूक्ष्म के प्रति विद्रोह' के रूप में देखा गया है। आम कविताऔर शास्त्रीय कविता की एक आड़-सी बना दी गई थी जिससे कविता की लोकप्रियता बाधित होने लगी। अनेक बहुत ही जनसंप्रेषण सुलभ कविताएँ लिखी गई पर जनकविता से दूर होता गया। इसी कारण यदि कामायनी जनमन तक नहीं पहुँच पा रही है तो अवके पीछे एक ताकत 'रहस्यवाद' की भी रही है। इसी कारण इस दौर में आया भारतेंदु के बाद पहली बार कविता को संप्रेषण की तलाश हुई। वह काल

Indexed Journal
Refereed Journal
Peer Reviewed Journal

www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232

International Journal of Hindi Research

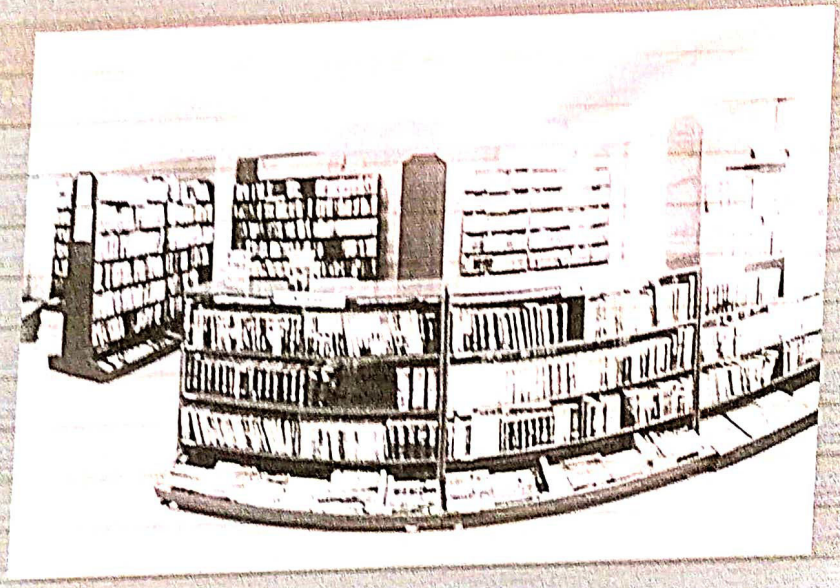

International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 30-05-2021, Accepted: 12-06-2021, Published: 30-06-2021
Volume 7, Issue 3, 2021, Page No. 143-148

भारतेंदु हरिश्चंद्र की भाषा दृष्टि और राष्ट्रीय चेतना

डॉ. आभा शर्मा

हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

सारांश

भारतेन्दु हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के माध्यम से देश की जनता में राष्ट्रीयता की चेतना फैला देना चाहते थे.भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिन्दी को राष्ट्रीयता की भावना का वाहक बनाया. भाषा को उन्होंने आम बोलचाल की भाषा से जोड़ा और समाज की नवीन चेतना के प्रसार का माध्यम बनाया. इस प्रकार उन्होंने भाषा को राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय चेतना से भाषा को समृद्ध करने का दुहरा काम सम्पन्न किया. यह भी एक कारण है कि भारतेन्दु हिंदी के प्रति जनता का समर्थन जुटाकर आंदोलन की सृष्टि करने में समर्थ हुए. भारतीय जनता की आम बोलचाल की भाषा को अपनाते हुए उन्होंने उस पर विशेष ध्यान दिया तथा व्यावहारिक स्तर पर अपनी रचनाओं में इसको आधार बनाया.

मूलशब्द: राष्ट्रीय चेतना, अंग्रेजी राज, भाषा नीति, गद्य विधा, साहित्यिक परिवर्तन

प्रस्तावना

भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिंदी साहित्य का जनक कहा जाता है. उन्हीं के समय में हिंदी गद्य का विकास और उसका परिमार्जन हुआ. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों पर पड़ा. उन्होंने जिस तरह गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नए मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया. उनके भाषा संस्कार की महत्ता को सब लोगों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया और वे हिंदी गद्य के प्रवर्तक माने गए"[1] वास्तव में भारतेंदु राष्ट्र के प्रति समर्पित बहुत ही सशक्त रचनाकार थे. साथ ही भाषा के प्रति भी वे बहुत चेतनशील थे. उनकी भाषा राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है और वही राष्ट्रीय चेतना उनके पूरे लेखन में परिलक्षित भी होती है. यही कारण है कि वर्तमान संदर्भ में भारतेन्दु की भाषा पर विचार करते समय उस ऐतिहासिक संदर्भ पर ध्यान देना प्रासंगिक और उपयोगी होगा जिसके आदर्शों से भारतेन्दु हरिश्चंद्र साहित्य साधना के लिए प्रेरित हुए थे. साथ ही यह जानना भी उतना ही ज़रूरी होगा कि भाषा के प्रति भारतेन्दु का जो एक सचेत और निश्चित दृष्टिकोण था, वह उनके साहित्य में किस तरह रूपयित हुआ. लेकिन उल्लेखनीय यह भी है कि उनका यह दृष्टिकोण केवल सामाजिक उद्देश्यों से ही प्रभावित नहीं था बल्कि उसके राजनीतिक निहितार्थ भी थे. ध्यान देने की बात यह है कि भारतेन्दु ने हिन्दी भाषा और उसके प्रचार-प्रसार के प्रति अपना जो

June - 2021

June 2021

Indexed Journal
Refereed Journal
Peer Reviewed Journal

www.hindijournal.in
E-ISSN: 2582-3493

Volume: 3 Issue: 2 Year: 2021

International Journal of Research in Hindi

Published By
Prime Publications
Journal List : www.newresearchjournal.com

International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 30-05-2021, Accepted: 15-06-2021, Published: 30-06-2021
Volume 3, Issue 2, 2021, Page No. 49-55

हजारीप्रसाद द्विवेदी की इतिहास दृष्टि

डॉ. आशा शर्मा

हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश

हजारीप्रसाद द्विवेदी परम्परावादी दृष्टि के साहित्येतिहासकार हैं। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य का निरूपण संपूर्ण भारतीय साहित्य के स्वाभाविक विकास के रूप में किया है. हिन्दी साहित्य और उसके विकास के बारे में शुक्ल जी की स्थापनाओं से उन्होंने कई आधारों पर अपना मतभेद प्रकट किया. उनकी मान्यता है कि भारतीय चिंतन और भारतीय साहित्य का सहज रूप से विकास हुआ है. इसलिए बाहरी प्रभावों को अत्यधिक महत्व देने से इसके वास्तविक स्वरूप को नहीं समझा जा सकता. द्विवेदीजी ने अपनी पुस्तक में विस्तार से उन कारणों और परिस्थितियों की व्याख्या की है जिनसे हिन्दी साहित्य का विकास संभव हुआ. साहित्येतिहास-लेखन में काल-विभाजन, नामकरण और कवियों तथा उनकी रचनाओं के मूल्यांकन के बारे में द्विवेदीजी ने शुक्ल जी की बातों से अपनी सहमति दर्शाते हुए भी कुछ नयी खोजें की हैं. उन्होंने शुक्ल जी द्वारा किए गए नामकरण, 'आदिकाल' और 'भक्तिकाव्य' के मूल्यांकन आदि की दृष्टि से अपनी असहमति व्यक्त की और अपनी नयी मान्यताएँ प्रस्तुत कीं.

मूलशब्दः साहित्येतिहास लेखन, भक्ति-आंदोलन, लोकतत्व, काल-विभाजन, नामकरण

प्रस्तावना

रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' साहित्य के इतिहास लेखन की दिशा में एक मील का पत्थर माना जाता है. परिमाण और गुणवत्ता दोनों ही दृष्टियों से उनका 'हिंदी साहित्य का इतिहास' अपने पूर्ववर्तियों के इतिहासलेखन सम्बंधी प्रयासों की तुलना में बहुत उन्नत, संतुलित और विकसित दृष्टिकोण का परिचय देता है. उनके बाद भी अनेक इतिहास लिखे गए हैं पर उनके परवर्ती इतिहासकारों में इस दृष्टि से हजारीप्रसाद द्विवेदी का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है. शुक्ल जी के इतिहास-ग्रंथ के प्रकाशन के बाद लगभग हर वर्ष एक इतिहास-ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, लेकिन कोई भी ग्रंथ शुक्ल जी के इतिहास की ऊँचाई को नहीं स्पर्श कर पाया. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया है. द्विवेदीजी की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', सन् 1940 प्रकाशित हुई. और 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', सन् 1952 में. लेकिन साहित्य के इतिहास लेखन की दृष्टि से 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' सर्वाधिक माहत्वपूर्ण पुस्तक है. 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में उन्होंने साहित्य को भारतीय साहित्य की प्राणधारा के रूप में देखा है. वे लिखते हैं,

> "आज से लगभग हज़ार वर्ष पहले हिंदी साहित्य बनना शुरू हुआ था. इन हज़ार वर्षों में

Indexed Journal
Refereed Journal
Peer Reviewed Journal

www.hindijournal.in
E-ISSN - 2582-3493

Volume: [illegible] Issue: [illegible] Year: 2021

International Journal of Research in Hindi

Published By
Prime Publications
Journal List : www.newresearchjournal.com

International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 30-05-2021, Accepted: 15-06-2021, Published: 30-06-2021
Volume 3, Issue 2, 2021, Page No. 49-55

हजारीप्रसाद द्विवेदी की इतिहास दृष्टि

डॉ. आभा शर्मा

हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश

हजारीप्रसाद द्विवेदी परम्परावादी दृष्टि के साहित्येतिहासकार हैं। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य का निरूपण संपूर्ण भारतीय साहित्य के स्वाभाविक विकास के रूप में किया है. हिन्दी साहित्य और उसके विकास के बारे में शुक्ल जी की स्थापनाओं से उन्होंने कई आधारों पर अपना मतभेद प्रकट किया. उनकी मान्यता है कि भारतीय चिंतन और भारतीय साहित्य का सहज रूप से विकास हुआ है. इसलिए बाहरी प्रभावों को अत्यधिक महत्व देने से इसके वास्तविक स्वरूप को नहीं समझा जा सकता. द्विवेदीजी ने अपनी पुस्तक में विस्तार से उन कारणों और परिस्थितियों की व्याख्या की है जिनसे हिन्दी साहित्य का विकास संभव हुआ. साहित्येतिहास-लेखन में काल-विभाजन, नामकरण और कवियों तथा उनकी रचनाओं के मूल्यांकन के बारे में द्विवेजी ने शुक्ल जी की बातों से अपनी सहमति दर्शाते हुए भी कुछ नयी खोजें की हैं. उन्होंने शुक्ल जी द्वारा किए गए नामकरण, 'आदिकाल' और 'भक्तिकाव्य' के मूल्यांकन आदि की दृष्टि से अपनी असहमति व्यक्त की और अपनी नयी मान्यताएँ प्रस्तुत कीं.

मूलशब्द: सहित्येतिहास लेखन, भक्ति-आंदोलन, लोकतत्व, काल-विभाजन, नामकरण

प्रस्तावना

रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' साहित्य के इतिहास लेखन की दिशा में एक मील का पत्थर माना जाता है. परिमाण और गुणवत्ता दोनों ही दृष्टियों से उनका 'हिंदी साहित्य का इतिहास' अपने पूर्ववर्तियों के इतिहासलेखन सम्बंधी प्रयासों की तुलना में बहुत उन्नत, संतुलित और विकसित दृष्टिकोण का परिचय देता है. उनके बाद भी अनेक इतिहास लिखे गए हैं पर उनके परवर्ती इतिहासकारों में इस दृष्टि से हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है. शुक्ल जी के इतिहास-ग्रंथ के प्रकाशन के बाद लगभग हर वर्ष एक इतिहास-ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, लेकिन कोई भी ग्रंथ शुक्ल जी के इतिहास की ऊँचाई को नहीं स्पर्श कर पाया. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया है. द्विवेदीजी की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', सन् 1940 प्रकाशित हुई. और 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', सन् 1952 में. लेकिन साहित्य के इतिहास लेखन की दृष्टि से 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' सर्वाधिक माहत्वपूर्ण पुस्तक है. 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में उन्होंने साहित्य को भारतीय साहित्य की प्राणधारा के रूप में देखा है. वे लिखते हैं,

> "आज से लगभग हज़ार वर्ष पहले हिंदी साहित्य बनना शुरू हुआ था. इन हज़ार वर्षों में

ISSN - 2348-2397
UGC CARE LISTED JOURNAL
DIS
शोध सरिता
January-March, 2021
Vol. 8, Issue 29
Page Nos. 205-208
AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

हजारी प्रसाद द्विवेदी की छायावाद सम्बंधी दृष्टि

डॉ० आभा शर्मा*

शोध सारांश

आचार्य हजारी द्विवेदी की इतिहास–दृष्टि मानवतावादी है। हिंदी साहित्य के इतिहास की पूरी परम्परा को उन्होंने एक स्वाभाविक चिंता की विकास–प्रक्रिया के रूप में देखा है। आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य का विश्लेषण करते हुए उन्होंने अचार्या रामचंद्र शुक्ल की साहित्य सम्बंधी स्थापना के साथ कई बिंदुओं पर अपनी असहमति व्यक्त की है। उन्होंने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ की कविता को नवीन युग की कविता कहा है। साथ ही इस काल को नवीन चेतना से सम्पन्न दौर ले आने वाला कहा है। देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में तेजी से आए परिवर्तनों पर आचार्य द्विवेदी ने नजर थी। जैसे रीतिकाल के साहित्य के संदर्भ में उन्होंने समाज के दो वर्गों – उत्पादक वर्ग और भोक्ता वर्ग की चर्चा की है, द्विवेदी जी का स्पष्ट विचार था कि नए और पुराने के ग्रहण में हमें बहुत सजग और सहृदय होकर चलना होगा। उनका विचार था कि परिवर्तित दौर में पुरानी मान्यताएं भी तेजी से बदली हैं और नए विचार सामने आए हैं। आचार्य द्विवेदी ने इन दोनों के बीच विवेकपूर्ण फैसला करने की आवश्यकता पर बल दिया।

Keywords : हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य का इतिहास–लेखन, आधुनिकता, छायवाद, पृष्ठभूमि

छायावादी कविता की पृष्ठभूमि के बारे में द्विवेदी जी ने लिखा है कि "पुराने मुक्तक में जिन विभावों की योजना केवल उद्दीपन के रूप में होती थी और जिन अनुभावों का वर्णन केवल मानवीय मनोरागों की अपेक्षा में ही होता था वे विभाव अब आलंबन के रूप में योजित होने लगे हैं और वे अनुभाव अब मनुष्य के बाहर के जगत के कल्पित मनोरागों के संबंध में प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसा करने के कारण भाषा में अधिकाधिक लाक्षणिकता आने लगी है क्योंकि जड़ प्रकृति को यदि आलंबन बनाकर उसमें अनुराग और हावों की योजना की जाएगी तो लक्षणा वृत्ति का आश्रय लेना ही पड़ेगा। हिंदी में कुछ वृद्ध आचार्यों को इस प्रकार की योजना परांद नहीं आयी थी।"1 (हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्यः उसका उद्भव और विकास, 284)

मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने वाले कवि के चित्त में उन काव्य रूढ़ियों का प्रभाव नहीं रह जाता जो दीर्घकालीन परंपरा और रीतिबद्ध चिंतन पद्धति के मार्ग से सरकती हुई सहृदय के चित्त पर आ गिरी होती हैं और कल्पना के अविरल प्रवाह में तथा आवेगों की निर्बाध अभिव्यक्ति में अंतराय उपस्थित करती है। इस दृष्टिकोण को अपनाने से सौंदर्य की नई दृष्टि मिलती है।

स्वच्छंदतावाद के बारे में कहा जाता है कि द्विवेदी–युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध स्वच्छंदतावाद का उदय हुआ। यह भी कहा गया कि इसके सूत्र पश्चिम से जुड़ते हैं। आचार्य हजारी द्विवेदी ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ की कविता को नवीन युग की कविता कहा है। साथ ही उन्होंने इस काल को नवीन चेतना से सम्पन्न दौर ले आने वाला कहा है। वे लिखते हैं कि "इस समय काव्य की भाषा ब्रजभाषा से बदलकर खड़ी बोली हो गयी। यद्यपि इस काल में भी कुछ शक्ति सम्पन्न कवि ब्रजभाषा को अपनाए रहे परंतु धीरे–धीरे ब्रजभाषा पीछे पड़ गयी और खड़ी बोली आगे निकल गयी। कवियों ने ब्रजभाषा में कविता लिखना शुरू किया था। बाद में समय का रंग देखकर इसे छोड़ दिया। इनमें से कई आगे चलकर खड़ी बोली के शक्तिशाली कवि सिद्ध हुए।"2 (हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्यः उसका उद्भव और विकास, 270)

कहना न होगा कि नवीन चेतना से युक्त इस काल की कविताओं के खड़ी बोली रचित ग्रंथ बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसी कारण द्विवेदी जी ने इस काल के प्रमुख कवियों के बारे में लिखा है कि वे आरंभ में ब्रजभाषा में कविता किया करते थे पर बाद में खड़ी बोली में लिखने लगे। श्रीधर पाठक पहले ब्रजभाषा में कविता लिखते थे, बाद में खड़ी बोली में लिखने लगे। इस संदर्भ में अनेक कवियों के नामों को द्विवेदी जी ने उद्धृत किया है। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और जयशंकर प्रसाद आदि ऐसे ही रचनाकार हैं, जो पहले ब्रजभाषा में रचना करते थे "परंतु उन दोनों कवियों को यश खड़ी बोली की कविता करने से ही

*हिंदी विभाग – महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

यूजीसी केयर लिस्ट में शामिल
जनवरी–मार्च 2021
वर्ष 11, अंक–21

मूल्य–100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

प्रेमचंद की साहित्य दृष्टि

डॉ. आभा शर्मा

प्रेमचंद हिंदी साहित्य में एक ऐसा नाम है जिसको भारतीय साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्वसाहित्य में भी महत्त्वपूर्ण पहचान मिली है। उनकी कहानियाँ, उपन्यास और समाज को उद्वेलित करने वाले विभिन्न विषयों से संबंधित लेख ही नहीं, बल्कि उनका पत्रकारिता-लेखन भी परवर्ती रचनाकारों के लिए अनुकरणीय बना हुआ है। साहित्य उनके लिए किसी तरह के मनोरंजन का साधन मात्र नहीं था बल्कि लेखन उनके लिए एक मिशन की भांति था। जीवन की कष्टपूर्ण और असहज पारिवारिक परिस्थितियों ने उनको अधिक संघर्षशील और मजबूत बनाया। कठिन स्थितियों के बीच भी उन्होंने न केवल पढ़ने की अपनी ललक कायम रखी बल्कि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के लिए जैसे भी संभव हुआ, पढाई की। साथ-साथ समय निकलकर देश-विदेश के अनेक लेखकों के साहित्य का अध्ययन भी किया। जीवन-यापन आसन नहीं था। "उन दिनों नाज बीस सेर का था लेकिन तब के लिए वह महंगाई थी। प्रेमचंद गाँव में रहते थे; ट्यूशन करते थे। शहर पढने जाते थे और पांच मील वापस आकर रात को कुप्पी जलाकर खूब पढ़ते थे। हाईस्कूल पास करने के बाद कॉलेज में वह तभी भरती हो सकते थे जब उनकी फीस माफ हो जाए और इसके लिए सिफारिशों की जरूरत थी। इसी समय मेहनत से चूर होकर वह बीमार पड़ गए और दो हफ्ते तक नीम का काढ़ा पीते रहे। बड़ी मुश्किल से कॉलेज में भरती हुए और जैसे-जैसे पढाई जारी रखी, लेकिन फेल हुए। तब इंटरमीडिएट में गणित ऐच्छिक विषय न था।" (प्रेमचंद और उनका युग, भूमिका, रामविलास शर्मा, पेज 18)

जीवन की अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी प्रेमचंद अपने रास्ते पर चलते रहे। वस्तुतः प्रेमचंद के जीवन की इन कठिन परिस्थितियों के बारे में अनेक लोगों ने लिखा भी है। उनकी जीवनी में भी इसका विस्तार से उल्लेख है। प्रेमचंद लिखते हैं, "मैट्रिकुलेशन तो किसी प्रकार पास हो गयाय पर आया सेकंड डिवीजन में और क्वींस कॉलेज में भरती होने की आशा न रही। फीस केवल अव्वल दर्जे वाले की ही मुआफ हो सकती थी। संयोग से उसी साल हिंदू कॉलेज खुल गया। मैंने इस नए कॉलेज में पढने का निश्चय किया। प्रिंसिपल थे मि. रिचर्डसन। उनके मकान पर गया। वह पूरे हिंदुस्तानी वेश में थे। कुरता और धोती पहने फर्श पर बैठे कुछ लिख रहे थे। मगर मिजाज को तब्दील करना इतना आसान न था।" साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद (मंगलसूत्र व अन्य रचनाएँ, पृष्ठ 165, सरस्वती प्रेस इलाहबाद। 1982)

प्रेमचंद के हौसले की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। खुद ही अपनी पढाई को जारी रखने के लिए संघर्ष करते हुए कहाँ-कहाँ नहीं गए। ऐसा कम ही देखने को मिलता है। प्रेमचंद लिखते हैं कि "मेरी प्रार्थना सुनकर आधी ही कहने पाया था—बोले कि घर में कॉलेज की बातचीत नहीं करता। कॉलेज में आओ। खैर, कॉलेज में गया। मुलाकात तो हुई, पर निराशाजनक। फीस मुआफ न हो सकती थी। अब क्या करूँ? अगर प्रतिष्ठित सिफारिशें ला सकता, तो शायद मेरी प्रार्थना पर कुछ विचार होताय लेकिन देहाती युवक को शहर में जानता ही कौन था?" साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद (मंगलसूत्र व अन्य रचनाएँ, पृष्ठ 166, सरस्वती प्रेस इलाहबाद। 1982)। लेकिन एक बात अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसके बावजूद प्रेमचंद उस स्थान पर पहुँचे जो बहुत से लोगों के लिए दुर्लभ है। यह जीवन की सच्चाइयों को आत्मसात करके उस असली अनुभव को अपनी रचनाओं में पिरो देने के कारण ही संभव हुआ। वस्तुतः जीवन साहित्य से पृथक नहीं है जैसा कि कुछ लोग मानते हैं। रचनाकार के जीवनानुभव उसके लेखन में परिलक्षित होते हैं। तत्कालीन सामाजिक समस्याओं की प्रेमचंद इतनी गहरी और यथार्थ समझ थी कि आज के संदर्भ में भी उनका आकलन बड़ा ही प्रासंगिक लगता है। प्रेमचंद ने जिस तरह स्वयं भी लिखा है कि गणित उनकी कमजोरी थी। अपनी इस कमजोरी के कारण वे कई बार परीक्षा में फेल हुए। यहाँ तक कि जब इंटरमीडिएट की परीक्षा में गणित से नियमानुसार मुक्ति मिल गई तभी परीक्षा पास कर सके। "गणित मेरे लिए गौरीशंकर की चोटी थी। कभी उस पर न चढ़ सका। इंटरमीडिएट में दो बार गणित में फेल हुआ और निराश होकर इम्तहान देना छोड़ दिया। दस बारह साल के बाद जब गणित की परीक्षा में अखियारी हो गई तब मैंने दूसरे विषय लेकर उसे आसानी से पास कर लिया। उस समय तक यूनिवर्सिटी के

'त्यागपत्र' उपन्यास में सामाजिक रुढ़ियाँ और नारी

डॉ. चन्द्रशेखर

सार

नारी के शोषण में पूरी एक बनी बनाई व्यवस्था का योगदान है, जिसके तहत हर क्षेत्र में एक समुचित ढंग से नारी शोषण को वैधता प्रदान की जाती है। भारतीय समाज में नारी को दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। नारी होने के नाते जाति–धर्म, खान–पान, परिवार–समाज की इज्जत, मर्यादा का ध्यान रखना भी महिलाओं के शिम्मे ही अधिक होता है। पुरुष के लिए इन सामाजिक बन्धनों का उतना महत्व नहीं होता। अतः वह स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेने में सक्षम होता है। परन्तु यदि नारी इस थोपी हुई सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देती है तो समाज उसके लिए कुल्टा, बदचलन, चरित्रहीन, वेश्या और न जाने क्या–क्या विशेषण प्रदान करता है और उसे उसी रास्ते से चलने को येन–केन–प्रकारेण विवश करता है जो समाज द्वारा निर्धारित है। 'त्यागपत्र' उपन्यास में जैनेन्द्र ने नारी के इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के साथ–साथ नारी शोषण के प्रति पुरुष के असली नाकाबपोश चेहरे का पर्दाफाश किया है। इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखकर यह शोध पत्र लिखा गया है।

'रुढ़ि' उन सामाजिक रीतियों और परंपराओं को कहते हैं, जो समय के साथ अपना स्थान न बना सकने के कारण पीछे रह जाती हैं। फलतः वे सामाजिक प्रगति में बाधक की भूमिका निभाती है। ये सामाजिक रुढ़ियाँ मनुष्य के स्वतन्त्र विकास में ठहराव लाने की कोशिश करती हैं। परिणामस्वरूप प्रगतिशीलता और रुढ़ि के द्वन्द्व में व्यक्ति पीड़ा का अनुभव करता है, जिससे वह किसी एक निश्चित उदय की ओर न बढ़कर निरन्तर अन्तर्द्वंद्व का शिकार होता है। इस प्रक्रिया में पुरुष और नारी दोनों ही हताहत होते हैं। फिर भी पुरुष को अपेक्षाकृत अधिक छूट होती है, क्योंकि सामाजिक व्यवस्था–निर्माण में उसकी मूल्य भूमिका होने के कारण उसने सारे नियम अपने पक्ष में बना रखे हैं। अतः जहां उसे आवश्यकता महसूस होती है, वह उसे आसानी से तोड़कर अपने अनुरूप संशोधन कर लेता है, परन्तु नारी को पुरुष द्वारा बनाई गई उन्हीं परंपराओं को ढोना होता है। इनमें यदि पुरुष संशोधन भी करता है तो उन्हीं सीमाओं के भीतर जिनमें उसके स्वयं के अधिकारों पर आंच न आती हो। अतः यह दोहरी सामाजिक व्यवस्था नारी के लिए किसी बंधुआगीरी से कम नहीं है, जिसे उसको न चाहते हुए भी ढोना पड़ता है। ये रुढ़ियां एक प्रकार से पुरुष द्वारा नारी शोषण को वैधता प्रदान करती हैं।

जैनेन्द्र ने 'त्यागपत्र' में पुरुष द्वारा शोषण की उस कुटिल नीति पर चोट की है, जिसमें सामाजिक ढांचे की दुहाई देने और दाम्पत्य जीवन के कल्याण की आड में विवाह और परिवार जैसी शोषण– संस्थाओं को वैधता प्रदान की जाती है ताकि नारी सदा के लिए पुरुष की उपभोग–वस्तु बनी रहे। उसे पुरुष कुछ छूट भी देता है तो नारी के कल्याण की दृष्टि से कम परन्तु स्वयं की सुविधा की दृष्टि से अधिक। इन परिवार और विवाह जैसी संस्थाओं के कारण नारी की स्वतन्त्रता निरन्तर बाधित होती रहती है। इसके चलते परिवार में नारी को इस ढंग से संस्कारित किया जाता है कि उनके भीतर यदि कोई प्रगतिशील भावना और विचार पनप रहा हो तो उसकी बाह्य अभिव्यक्ति न हो पाये। यह व्यवस्था केवल तात्कालिक ही नहीं होती, बल्कि इसके पीछे सैंकडों वर्षों से पुरुष की सोच और उपभोक्तावादी विचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह बात केवल प्रेम के बारे में ही नहीं वरन् जीवन के किसी भी क्षेत्र में संवेदना को छिपाने के संदर्भ में उतनी ही सच है। जहां पुरुष के लिए प्रेम स्वच्छन्द और खुले रूप में सामाजिक मान्यता पाता है, वहीं स्त्री के लिए संयम और नैतिकता की दुहाई दी जाती है। यह भी मूलतः प्रवृत्तियों को दबाने वाली बात ही है। अगर कहीं स्त्री भावावेग और संयम का बांध तोड़ कर बाहर निकलना चाहती है तो समाज उसे मान्यता नहीं देता, साथ ही साथ उसे मानसिक, नैतिक और सामाजिक स्तर पर प्रताड़ित भी किया जाता है। इसका अच्छा उदाहरण 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल है, जो अपने स्वच्छन्द प्रेम के कारण अपनी भाभी द्वारा डण्डे से मार खाने के बाद अपने प्रेम के कडुवे घूंट को पी जाती है। उसका प्रेम सदा के लिए मर जाता है। बीच–बीच में यदि उसे उस पूर्व प्रेम की याद भी आती है तो सामाजिक प्रताड़ना और नैतिक मान्यताओं का भय उसे दबा देता है। मृणाल के प्रेम को कुण्ठित करने में जितना उसके भैया और भाभी का हाथ रहा है, उससे कहीं अधिक भूमिका सामाजिक रुढ़ियों और बन्धनों की रही। वैसे तो वाचाल होना सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नारी के लिए दोश समझा जाता है। प्रेम–प्रसंगों में यह स्थिति मनोवैज्ञानिक ही नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टि से भी और अधिक महत्वपूर्ण है। कुछ ऐसी स्थिति 'त्यागपत्र' की मृणाल की भी है। वह अपनी सहेली शीला के भाई से विद्यार्थी जीवन में ही प्रेम करने के साथ–साथ उसे पाने का भी प्रयत्न करती है। परन्तु इस तरह का आचरण परिवार और समाज में नारी के लिए कलंक माना जाता है। इसी सामाजिक रुढ़ि से ग्रस्त 'मृणाल' का परिवार भी दिखाई पड़ता है। मृणाल के संरक्षक भैया और भाभी को इस प्रकार का मुक्त प्रेम और प्रेम–विवाह पसंद नहीं है। अतः मृणाल के इस प्रेम का पता लगते ही वे सामाजिक कलंक की इस बला से निजात पाने के लिए उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध जल्द ही कर देते हैं। यहां यह प्रश्न उठता है कि जिस भैया ने मृणाल को बचपन से लेकर किशोरावस्था तक इतना प्यार दिया, उसकी इच्छाएं पूरी कीं और उसे युवावस्था के पहले तक यथासम्भव स्वच्छन्दता दी, वे ही इतने निष्ठुर और मृणाल के प्रति कठोर कैसे हो गए? उन्होंने उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध एक अधिक उम्र के व्यक्ति से क्यों कर दिया? वे अपनी पत्नी का विरोध

Volume:02 Issue: 01 January 2022

BAYAN COLLEGE INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

(A Peer Reviewed International Journal)

(ISSN Online: 2710-2432)
(ISSN Print: 2710-2424)

www.bayancollegeijmr.com

Scanned with CamScanner

Bayan College International Journal of Multidisciplinary Research
(A peer reviewed international Journal)

ISSN (Online)- 2710-2432
ISSN (Print)-2710-2424
Vol-02-Issue-01; January-2022

Literature, Society and Politics: In Context of Raghuveer Sahay

Dr. Tej Narayan Ojha
Associate Professor
Maharaja Agrasen College
University of Delhi
tnojha@mac.du.ac.in
Dr. Swati Kumari
swatiojha.hindi@gmail.com
Dr. Rashmi Pandey
rashmipojha@gmail.com

Abstract: The study of the relationship between literature, society and politics has been the main concern of modern literary thought. Just as religion can be said to be the center of medieval life, in the same way it will not be an exaggeration to call politics the focal point of modern life. In view of the omnipresent influence of politics in human life, Thomas Mann had said that in our time the destiny of man is explained in political relations. Since no meaningful author can be free from human destiny, therefore he cannot be free from politics either. In Hindi literature, there was a debate going on for a long time whether literature should be given priority in life or politics. Premchand did not consider literature to be the truth behind politics, but considered it to be a guiding torch. No literature can be free from its surroundings and in this sense every creation is political. Nemichandra Jain, while clarifying the relationship between poetry and politics, says that although the author does not directly create the political world, the world he creates is essentially related to human life, so he cannot be free from politics. According to him, "The poet may not create the political world directly, but the world he creates in poetry, if meaningful, is a world made by the experience of politics and its tools."

Keywords: Literature, Society, Politics, Creativity, Common Man, Art, Reality, Freedom, Democracy, Rights, Creativity, Creativity, Nationalism

Introduction

Raghuveer Sahay also considers healthy politics to be necessary for creative work, but like Premchand, he also does not consider literature as a slave of politics. He believes that to the extent that politics is necessary for social change, literature is also necessary for the mind. Neither one can be called primary and the other secondary. Rather, in many ways, he considers organized politics to be destructive to creation because the main purpose of organized politics or power is to limit the freedom of the individual. "I want to be very clear about the meaning of politics. If you mean again and again that politics of parties or politics of power, then I do not mean that because power politics and creation are contradictory to each other".[1]

It is clear that Raghuveer Sahay does not see politics only by connecting it with power policy. According to him politics works to make a better society. As far as the politics of parties or power-policy is concerned, the author does not deny the relationship between literature and politics, even if

[1]Raghuveer Sahay, YatharthYathasthitiNahi, Page 90

Scanned with CamScanner